REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 13 | ISSUE - 5 | FEBRUARY - 2024

गोविन्द मिश्र के कथा–साहित्य में चित्रित सामाजिक चेतना

डॉ. प्रतिभा सिंह
सहायक प्राध्यापक, हिंदी,
शा. शहीद केदारनाथ महाविद्यालय मऊगंज (म0प्र0).

सारांश :–

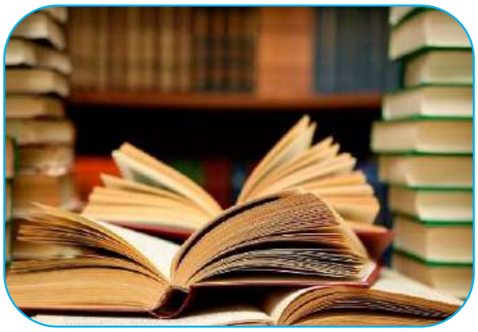

गोविन्द मिश्र के कथा–साहित्य में सामाजिक चेतना को अद्वितीय रूप से चित्रित किया गया है। उनकी कहानियाँ व्यक्तिगत और सामाजिक मुद्दों पर आधारित होती हैं और उन्हें उत्कृष्ट कथा–कला के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। गोविन्द मिश्र के लेखन में गरीबी, सामाजिक विभाजन, महिला सशक्तिकरण, सांस्कृतिक विरोध, आर राष्ट्रीय उत्थान जैसे महत्वपूर्ण विषयों पर ध्यान केंद्रित किया गया है। उनके कथानक में व्यक्तिगत अनुभवों का उत्कृष्ट वर्णन है, जो पाठकों को समाज में जागरूकता प्रदान करता है। गोविन्द मिश्र के लेखन में संवेदनशीलता, सहजता, और साहित्यिक योगदान की गहरी भावना है। उनकी कहानियाँ आज भी सामाजिक चेतना में संवेदनशीलता और जागरूकता का स्रोत बनी हैं और पाठकों को समाज में सकारात्मक परिवर्तन के लिए प्रेरित करती हैं।

मूल शब्द :–सामाजिक चेतना, पारस्परिक सहायता, मानव सृष्टि।

भूमिका :–

गोविन्द मिश्र एक प्रमुख हिंदी कथा–साहित्यकार हैं, जो भारतीय समाज की विभिन्न मुद्दों और समस्याओं को अपनी कहानियों के माध्यम से उजागर करते हैं। उनका जन्म १६४६ में मध्य प्रदेश के ग्वालियर में हुआ था। उन्होंने ग्वालियर विश्वविद्यालय से साहित्य में स्नातक की डिग्री प्राप्त की और फिर दिल्ली विश्वविद्यालय से साहित्य में मास्टर्स की डिग्री प्राप्त की। गोविन्द मिश्र की कहानियों में व्यक्तिगत और सामाजिक विचारधारा, मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों का सम्मान, और समाज में समानता के प्रति संवेदनशीलता का प्रचलन होता है। उनकी कहानियों में आम आदमी के जीवन की समस्याओं को अद्वितोयता के साथ प्रस्तुत किया जाता है और उनके लेखन में सामाजिक विचारधारा को प्रोत्साहित किया जाता है। गोविन्द मिश्र ने अपने कहानी संग्रह ''दुष्यंत की दिवानी'' के लिए १६८७ में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त किया था। उनके अन्य प्रमुख लेखन में ''स्वामी सच्चिदानंद'' और ''मुक्तिवा'' शामिल हैं। गोविन्द मिश्र के कहानी संग्रह और उपन्यासों का व्यापक प्रकाशन हुआ है और उनका लेखन हिंदी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

सामाजिक चेतना की उपज होने के कारण साहित्य का समाज से घनिष्ठ संबंध होता है। साहित्य समाज का श्रेय और प्रेम दानों होता है। ''किसी मनुष्य की चेतना उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति न होकर सामाजिक उपक्रम का परिणाम होती है।'' डॉ. रत्नाकर पाण्डेय के अनुसार–''सामाजिक चेतना नकारात्मक नहीं होती। वह व्यक्ति मात्र में विद्यमान रहती है परन्तु रूढ़ि अशिक्षा और अभावों के कारण दुष्प्रभावित आर कुण्ठित हो जाती है। इस दुष्प्रभाव से मुक्त रहकर कुण्ठा को अपनी अंतर्वृत्ति से तिरोहित बनाए रखना ही सामाजिक चेतना है।'' 'चेतना' शब्द बड़ा ही व्यापक है। इसे ज्ञान, होश, बोध, चैत्य एवं जीवन के अर्थ में ग्रहण किया जा सकता है।

यह सजीवों में रहने वाला वह तत्व ह जो उसे निर्जीव पदार्थों से भिन्न बनाता है। चेतना एक जीवंत शक्ति है जिसका स्थान मन या मस्तिष्क है। इसका संबंध व्यक्ति के अपने विचारों से होता है। इसकी प्रेरणा के अभाव में कोई व्यक्ति कार्य नहीं कर सकता क्योंकि यही वह शक्ति है जिसके कारण व्यक्ति निर्णय ले सकता है।

''दार्शनिक परिभाषा के अंतर्गत चेतना, विचारों, अनुभूतियों और संकल्पों की आनुषंगिक दशा, स्थिति अथवा क्षमता है। हैमिल्टन चेतना को चिंतनशील प्राणी द्वारा अपने कार्य अथवा प्रवृत्तियों की स्वीकृति मानता है।'' सामाजिक चेतना में पद है–सामाजिक और चेतना। सामाजिक का शाब्दिक अर्थ है–समाज से संबंध रखने वाला। सभा से संबंध रखने वाला रसज्ञ। चेतना का शाब्दिक अर्थ है–मनोवृत्ति बुद्धि, स्मृति, स्मरण, सुध, संज्ञा, चेतनता। होश, बुद्धि, चेतन्य, ज्ञान जीवन, चेत, याद, जीवन शक्ति।

सामाजिक चेतना दो शब्दों के मेल से बना है जिसमें समाज और चेतना दोनों का सम्मिलित अर्थ समाविष्ट है। प्रबुद्ध समाज या समाज की जागृति को इसके पर्याय के अर्थ में ग्रहण किया जा सकता है। सामाजिक चेतना, मानवीय चेतना से बहुत अलग नहीं हो सकती है क्योंकि मानवों से मिलकर ही समाज का निर्माण होता है। फलतः मानव के क्रियाकलाप उसके गुण अवगुण से मानव समाज अछूता नहीं रह सकता है। जीव सृष्टि में अब तक मानव का जीवन ही सबसे विकसित माना गया है और मानव को लेकर ही समाज बना है। अतः मानव की व्यक्तिगत चेतना का जोड़ ही सामाजिक चेतना बन जाता है।

विश्लेषण :–

सामाजिक चेतना का प्रयोग व्यापक अर्थ में होता है, न केवल यह समूह के सामाजिक नियंत्रण से संबद्ध है, अपितु समूह के सदस्यों के पारस्परिक व्यवहार पर भी प्रकाश डालती है।

सामाजिक चेतना के घटक :

सामाजिक चेतना के निम्नलिखित घटक हैं जो इस प्रकार से हैं–

(क) परिवार :

मनुष्य की आवश्यकताएँ असीम हैं और उसकी पूर्ति के लिए उसे अनेक लोगों से सहयोग लेना पड़ता है। यह सहयोग करने की प्रवृत्ति उसमें स्वाभाविक रूप से विद्यमान होती है। ''अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वह विभिन्न प्रकार के संघों का निर्माण करता है जिसमें सबसे महत्वपूर्ण स्थान परिवार का है।''

(ख) समाज :

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में रहना उसका स्वभाव है। ''जिस प्रकार पक्षियों की प्रकृति है कि वे उड़े, मछलियों की प्रकृति है कि वे जल में तैरें, जीवधारियों की प्रकृति है कि उनके शरीर अपनी वृद्धि करें, वैसे ही मनुष्य की प्रकृति है कि वह समाज व समुदाय बनाकर रहे, अपनी इस प्रकृति के कारण ही मनुष्य अपने साथी अन्य मनुष्यों के साथ अनेक विध संबंध स्थापित करता है।''

''किसी भी समाज के स्वरूप को निर्धारित करने वाले लक्षण सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक आदि होते हैं।'' ''समाज की कोई न कोई सांस्कृतिक या भौगोलिक सीमा होती है कोई भी समाज हमेशा के लिए घुमक्कड़ी स्थिति में नही रह सकता। स्थिरता ही समाज की एक ऐसी विशेषता है जो इंसान को जानवरों से अलग करती है। समाज में क्षेत्रीय सीमाओं के अंतर्गत बहुत से छोटे–छोटे अक्षेत्र होते हैं।'' समाज के घटक हैं–व्यक्ति, परिवार, वर्ग, समुदाय, राज्य आदि लेकिन इन सब के मूल में जटिल मानवीय सम्बम्धता होती है। मानवी संबंधताएँ अपनी सक्रियता की प्रवृत्ति के कारण साधन और साध्य की नयी सम्बंधता में ढलती हैं। समाज में रहते हुए व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। सम्पर्क की यह क्रिया निरंतर घटित होती रहती है, जिससे सामाजिक संबंधों की स्थापना होती है व्यक्ति के इन सामाजिक संबंध को ही 'समाज' कहा जाता है।''

मैकाइवर के अनुसार–''जो चलन है, जो कार्य विधियाँ हैं, पारस्परिक सहायता की जो प्रवृत्ति है, शासन की जो भावना है, जो अनेक समूह व विभाग विद्यमान हैं, मानव व्यवहार के संबंध में जो स्वतंत्रताएँ व मर्यादाएँ

हैं, उनके व्यवस्था को ही समाज कहते हैं। अतः इस निरंतर परिवर्तित होती हुई जटिल व्यवस्था को ही समाज कहा जाता है। यह सामाजिक संबंधों का ताना–बाना है जो सदा बदलता रहता है।''

(ग) धर्म :

धर्म शब्द का अर्थ है धारण करने वाला। इस अर्थ में धर्म का प्रयोग ऋग्वेद में (अतो धर्माणिधारयेन ऋग्वेद, 1, 22, 18) हुआ है। वैदिक साहित्य में भी धर्म को धारण करने के अर्थ में ही कहा गया ह। वैदिक धर्म मुख्यतः समाज प्रधान था। ''साथ–साथ चलो, साथ–साथ बोलो'' यह वैदिक धर्म का मूल वाक्य रहा है। कालांतर में धर्म के इस स्वरूप में परिवर्तन आया है। सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ ही धर्म समाज परक न होकर व्यक्ति परक होने लगा। भारतीय संस्कृति में धर्म का प्रगाढ़ संबंध है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों का मूलाधार भी धर्म ही रहा है। परम्परा में धर्म जीवन से पृथक नहीं देखा गया। भारतीय जीवन की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से धर्म के प्रति आस्था अपने आप में एक विशेषता रही है।

(घ) शिक्षा :

मानव द्वारा आदिकाल से ही ज्ञान का संचय किया जाता है। प्रत्येक नयी पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी के द्वारा कुछ ज्ञान सामाजिक विरासत में प्राप्त होता है और कुछ वह स्वयं अर्जित करता है। शिक्षा समाज के निर्माण एवं विकास का अभिन्न अंग होती है। शिक्षा के द्वारा कोई व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र अपनी आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक उन्नति कर सकता है। एम.वी. अंजारिया के शब्दों में–''शिक्षा सामाजिक सेवाओं के विविध रूपों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। यह नागरिक की जनता के कार्यों में बुद्धिपूर्वक भाग लेने की क्षमता को बढ़ाती है। शिक्षा व्यक्तित्व के विकास में सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है, यह समाज के लिए उपयोगी अभ्यासजनित योग्यताओं, मनोवृत्तियों, आदतों को उत्साहित एवं समृद्ध करने का एक यंत्र है। शिक्षा के उच्च सार स्तर से समाज की इतर भी उन्नत होती हैं।'' स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व भारतीय ग्रामीण समाज में शिक्षा का प्रचार–प्रसार अपेक्षाकृत कम था। उस समय मानव शिक्षा का लक्ष्य मात्र आजीविका प्राप्त करना था। डॉ. भोलानाथ के शब्दों में–''देहात के निवासी को पढ़ने–लिखने की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं हो पाता था। पढ़ाई नौकरी के लिए भी और देहाती के आदमी को करवानी थी खेती। अधिकांशतः लोगों ने अक्षर ज्ञान भी नहीं प्राप्त किया। सदा अंगूठा लगाने को तैयार रहते थे। किसी–किसी गांव में प्राइमरी स्कूल अवश्य थे जिनमें दो–तीन मील दूर से लड़के पढ़ने के लिए आया करते थे।''

(ड.) नारी संदर्भ :

नारी का समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। नारी के बिना इस संसार की कल्पना नहीं की जा सकती है। यदि नारी नहीं होगी तो मानव सृष्टि का विकास रूक जाएगा। वैदिक काल में नारी को देवी के समान माना जाता था। उस समय नारी के प्रति लोगों की धारणा–''यत्र नार्यस्तु पूज्यंते, रमन्ते तत्र देवता'' की थो। उस समय नारी को आदि शक्ति, अर्द्धांगिनी, ग्रह लक्ष्मी समझा जाता था। धीरे–धीरे नारी की स्थिति का पतन होने लगा। मुगलकाल में कन्या के पैदा होते ही उसे मार दिया जाता था। सती प्रथा पर्दा प्रथा जैसी कुरूतियाँ समाज में फैली हुई थीं। ब्रिटिश शासन काल में नारी को स्थिति बद से बदत्तर हो गई। उस समय नारी का स्थान अधिकार विहीन, पुरुष आश्रित और शोषित सदस्य का था। लड़कियों के लिए दहेज की, अनमेल विवाह की, सपत्नियों की आदि समस्याएँ थीं। नारी को शिक्षा का अधिकार नहीं था। विधवा पुनः घर नहीं बसा सकती थी। औरत केवल भोग की वस्तु थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भी नारी की स्थिति दयनीय थी। आज भी हमारे समाज में नारी की विभिन्न समस्याएँ व्याप्त हैं।

दहेज प्रथा :

दहेज की मांग उन कारणों में से एक है जिसके कारण भारत में कन्याओं का विवाह माता–पिता के लिए चिंता का कारण बन जाता है। पुत्री के विवाह के लिए पिता कितना चिंतित रहता है कि पिता की चिंता को देखकर पुत्री पर क्या बीतती है यह वह स्वयं ही जानती है। दहेज एक प्रकार का भस्मासुर है जो न जाने कितनी कन्याओं को अपना ग्रास बना लेता है। दहेज समाज के लिए एक प्रकार का अभिशाप ह, एक प्रकार का कोढ़ है, एक प्रकार की अग्नि है जिसकी ज्वाला में न जाने कितनी कन्याओं की आशा आकांक्षाएँ, सपने और

कभी स्वयं भी भस्मीभूत हो जाती है। दहेज प्रथा के बारे में डॉ. महेन्द्र नटनागर लिखते हैं–''हिन्दू समाज में वैवाहिक समस्या को जटिल बनाया है दहेज प्रथा ने। अनेक सुंदर सुशिक्षित और सुसंस्कृत लड़कियाँ समुचित दहेज के अभाव में असुंदर, मूर्ख और असंस्कृत लड़कों से ब्याह दी जाती हैं।''

अतः आज समाज में दहेज प्रथा एवं उसकी समस्या मुँह बाये खड़ी है। उसका शिकार उच्च, मध्यम एवं निम्न सभी वर्ग हैं।

अनमेल विवाह :

दहेज प्रथा के समान अनमेल विवाह की कुप्रथा हमारे समाज में आज भी विद्यमान है। अनमेल विवाह के समान ही घातक बाल विवाह की कुप्रथा भी रही है। 'दोहाजू' विवाह, अनमेल विवाह आदि कुरीतियों ने समाज के ढांचे को जर्जर कर दिया है। अनमेल विवाह होने के दो कारण हैं–प्रथम–दहेज प्रथा, दूसरा–माता–पिता की ओर से पर्याप्त असावधानी। सामान्यता अनमेल विवाह का आशय कन्या की उम्र कमजोर वर की अधिक उम्र अर्थात् वर वधु की उम्र में असमानता से लिया जाता है। किन्तु उम्र की असमानता ही नहीं बल्कि वर वधु की व्यक्तित्व एवं शिक्षा में भिन्नता तथा एक दूसरे से अनिच्छित विवाह भी अनमेल विवाह की श्रेणी में आते हैं। अनमेल विवाह समाज की एक महत्वपूर्ण समस्या है जो कुलीन विवाह, वर मूल्य प्रथा एवं जाति की अंतर्विवाही प्रवृत्ति का परिणाम है।

वेश्या समस्या :

वेश्याओं की समस्या भारतीय समाज में विशेषकर नारी जीवन की कदाचित् सबसे गंभीर और चिर–परिचित ज्वलंत समस्या है। वेश्यावृत्ति यथार्थ रूप में एक प्रकार का अवैध यौन संबंध है जो धन प्राप्ति हेतु नारी द्वारा अनेक व्यक्तियों के साथ किया जाता है। यह अत्यन्त पाचीन यौन व्यवसाय है जो सभी सभ्य समाजों में संगठित रूप से प्रचलित रहा है। अधिकतर वेश्याएँ भागी हुई लड़कियाँ, सगे संबंधियों के दुर्व्यवहार से पीड़ित, तिरस्कृत एवं विधवा नारिया, समाज उपेक्षित एवं अविवाहित माताएँ होती हैं। जो नगरों में आकर वेश्याओं के दलाल के चंगुल में फंसकर मजबूरी में वेश्यावृत्ति का व्यवसाय ग्रहण करती हैं।

महत्व :–

गोविन्द मिश्र के कथा–साहित्य में चित्रित सामाजिक चेतना का महत्व अत्यधिक है। उनकी कहानियाँ भारतीय समाज की विभिन्न विषमताओं, असमानताओं, और उनके मूल समाजिक कारणों को उजागर करती हैं। उनके लेखन में समाज की विभिन्न वर्गों, जातियों, और समाजिक परिवेशों के अध्ययन का महत्वपूर्ण स्थान है। गोविन्द मिश्र के कथानक में व्यक्तिगत और सामाजिक विचारधारा का संगम होता है, जो पाठकों को समाज में सकारात्मक परिवर्तन के लिए प्रेरित करता है। उनको कहानियों में गरीबी, उत्पीड़न, समाज में विभाजन, महिला सशक्तिकरण, और सांस्कृतिक विरोध जैसे महत्वपूर्ण मुद्दे उठाए गए हैं, जो उनके लेखन के महत्व को बढ़ाते हैं। उनके कथानक में समाज में विविधता, समानता, न्याय, और इंसानी अधिकारों के महत्व को प्रमुखता दी गई है। इस प्रकार, गोविन्द मिश्र के कथा–साहित्य में चित्रित सामाजिक चेतना का महत्व इस बात में है कि उनके लेखन से समाज में संवेदनशीलता और जागरूकता को बढ़ावा दिया जाता है और समाज में सकारात्मक परिवर्तन के लिए प्रेरित किया जाता है।

निष्कर्ष :–

समग्रालोचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सौ से अधिक कहानियों में गोविन्द मिश्र जी ने एक विराट अनुभवफलक हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है। ऐसे–ऐसे पात्र उन्होंने हमारे सम्मुख प्रस्तुत किए हैं जो शायद अन्य कथाकारों की नजरों में कभी आए नहीं। उनकी अधिकांश कहानियाँ निम्न मध्यवर्ग और मध्यवर्ग से ही संबंधित है। भाषा शैली और शिल्प बेजोड़ है। अतः गोविन्द मिश्र का समग्र कहानी साहित्य समाज को एक नयी सीख देती है।गोविन्द मिश्र के कथा–साहित्य में चित्रित सामाजिक चेतना का निष्कर्ष यह है कि उनके लेखन में समाज की विभिन्न समस्याओं और उनके मूल समाजिक कारणों को विवेचना की गई है। उनकी कहानियों में गरीबी, उत्पीड़न, समाज में विभाजन, महिला सशक्तिकरण, और सांस्कृतिक विरोध जैसे महत्वपूर्ण

मुद्दे उठाए गए हैं। उनके लेखन में व्यक्तिगत और सामाजिक विचारधारा का संगम दिखाया गया है, जिससे पाठकों को समाज में सकारात्मक परिवर्तन की प्रेरणा मिलती है। उनकी कहानियों के माध्यम से, समाज में समानता, न्याय, और इंसानी अधिकारों के महत्व को बढ़ावा दिया गया है। इस प्रकार, गोविन्द मिश्र के लेखन से समाज में संवेदनशीलता और जागरूकता का स्रोत बनता है और उनके लेखन का एक महत्वपूर्ण योगदान है।

संदर्भ :–

- अज्ञेय : हिन्दी साहित्य आधुनिक परिदृश्य, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1976
- अर्जुन चव्हान : राजेन्द्र के उपन्यासों में मध्यवर्ग, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली
- अर्जुन चव्हान : समकालीन उपन्यासों का वैचारिक पक्ष, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- अब्दुल जलील और रवि : समकालीन हिन्दी उपन्यास, समय और संवेदना, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2000
- आचार्य हजारी प्रसाद : विचार और विमर्श, साहित्य भवन प्रा.लि., द्विवेदी इलाहाबाद
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, रचना प्रकाशन, जयपुर, 2011